सतरंगे पंखोंवाली

•

नागार्जुन

•

UNIVERSITY LIBRARY
13 APR 1960
ALLAHABAD

५७०८

यात्री-प्रकाशन, कलकत्ता-७

प्रस्तुत संकलन की अधिकांश रचनाएँ '५६-'५७-'५८ की हैं। 'चातकी' बहुत पुरानी रचना है। 'कालिदास' 'सिन्दूर तिलकित भाल' 'दंतुरित मुस्कान' और 'गीले पाँक की दुनिया गई है छोड़' शीर्षक रचनाएँ भी काफी पुरानी हैं, पत्र-पत्रिकाओं में इनका प्रकाशन यद्यपि इधर आ कर हुआ—'५६ के बाद।

●

'युगधारा' (संकलन-'५६) से एक भी रचना यहाँ नहीं ली गई है। ये सभी रचनाएँ इस पूर्व किसी संकलन में नहीं आई हैं।

●

'युगधारा' दुबारा नहीं छपेगी। उस संकलन की विशिष्ट रचनाएँ "तालाब की मछलियाँ और अन्य कविताएँ" नामक संकलन के अंदर आ जाएँगी।

●

गैर-हिन्दी भाषी प्रदेशों के प्रकाशक प्रस्तुत संकलन से पाठ्य-क्रम आदि के लिए कोई भी रचना ले सकते हैं, एतदर्थ अनुमति लेना जरूरी नहीं। हाँ, सूचित अवश्य कर दें।

वैद्यनाथ मिश्र (यात्री   नागार्जुन), जन्म—१९११ ई०, पैतृक वासभूमि—तरौनी (जि० दरभगा), मुख्य शिक्षा—सस्कृत और पालि माध्यमो से साहित्य एव दर्शन की (काशी, कलकत्ता और केलानिया-कोलबो)

सस्कृत, मैथिली और हिन्दी भाषाओं मे साहित्य-निर्माण, रचनाएँ—चित्रा, विशाखा (मैथिली में काव्य-सकलन) युगधारा, शपथ, प्रेत का बयान, खून और शोले, चना जोर गरम (हिन्दी मे काव्य-सकलन) पारो, बलचनमा, नवतुरिया (मैथिली मे उपन्यास) रतिनाथ की चाची, बलचनमा, नई पौध, बाबा बटेसरनाथ, वरुण के बेटे, दुखमोचन (हिन्दी में उपन्यास), धर्मालोक-शतकम् (सिंहली लिपि मे प्रकाशित सस्कृत भाषा का लघुकाव्य) देश-दशकम्, कृषक-दशकम्, श्रमिक-दशकम् (सस्कृत में कविताएँ)

●●●

●●●

सतरंगे पंखोंवाली

सतरंगे पंखोंवाली

दिये थे किसी ने शाप
लाख की कोशिश
नही बचा पाया उन्हे
गल गये बेचारे
सहज शुभाशसा की मृदु-मद्धिम आँच मे
हाय, गल ही गये!
जाने कैसे थे वे शाप
जाने किधर से आये थे बेचारे

दी थी यद्यपि आशीष नही किसी ने
फिर भी, हाँ, फिर भी
आ ही गई बेचारी
तिहरी मुस्कान के चटकीले डैनो पे सवार
निगाहो ने कहा—आओ बहन, स्वागत!
तन गई पलको की पश्मीन छतरी

एक बार झाँका निगाहो के अदर
ठमक गई बरोनियो की डचोढी पर
बार-बार पूछा तो बोली—
झुलसा पडा है यहाँ दिल का बगीचा

गवारा नही होगी कडवी-कसैली भाफ
ऐसे मे तो अपना दम ही घुट जायगा
गले है जाने किनके ककाल
नोनी लगी है जाने किनके हाडो मे
छिडक देते कपूरी पराग
काश तुम अपनी सादी मुस्कान का !

अतर की सपाट भूमिका से
परिचित तो था ही
कर ली कबूल भीतरी दरिद्रता
क्षण भर बाद बोला विनीत मै—
हाँ जी, ऊवमी अशुभ शाप ही तो थे
गलते-गलते भी
छोड गये ढेर-सी
जहरीली बू-बास !

आ ही गई उझक-उझक कर होठो के कगारो तक
सजीदगी मे डूबी कृतज्ञ मुस्कान
तगर की-सी सादगी मे
जगमगा उठे धसे-धँसे गाल
फिर तो मुसकुराई मासूम आशीष
सतरगे पखोवाली पवित्र तितली
खिले मुख की इर्द-गिर्द लग गई मडराने
आहिस्ते से गुनगुनाई—
हाँ, अब आ सकती हूँ
मिट गई भलीभाँति शापो की तासीर
अब तो मै रह लूगी पद्मगधी मानस में

तो फिर निगाहों ने कहा—आओ बहन, स्वागत ,
तन गई तत्काल पलकों की पश्मीन छतरी

हो चुकी थी आशीष अंदर दाखिल
तो भी देर तक निगाहों पर
तनी रही पलकों की पश्मीन छतरी
हो चुकी थी आशीष अंदर दाखिल
तो भी देर तक
उझक-उझक कर आती रही बाहर
संजीदा और कृतज्ञ मुस्कान

यह कैसे होगा ?

यह कैसे होगा ?
यह क्योंकर होगा ?

नई-नई सृष्टि रचने को तत्पर
कोटि-कोटि कर-चरण
देते रहे अहरह स्निग्ध इंगित
और मैं अलस-अकर्मा
पड़ा रहूँ चुपचाप !
यह कैसे होगा ?
यह क्योंकर होगा ?

अधिकाधिक योग-क्षेम
अधिकाधिक शुभ-लाभ
अधिकाधिक चेतना
कर लूँ संचित लघुतम परिधि में !
असीम रहे व्यक्तिगत हर्ष-उत्कर्ष !
अकेले ही सकुशल जी लूँ सौ वर्ष !
यह कैसे होगा ?
यह क्योंकर होगा ?

यथासमय मुकुलित हो
यथासमय पुष्पित हो
यथासमय फल दे
आम और जामुन, लीची और कटहल!
तो फिर मैं ही बाँझ रहूँ!
मैं ही न दे पाऊँ--
परिणत प्रज्ञा का अपना फल!
यह कैसे होगा?
यह क्योंकर होगा?

सलिल को सुधा बनाए तटबध
धरा को मुदित करें नियन्त्रित नदियाँ
तो फिर मैं ही रहूँ निर्बंध!
मैं ही रहूं अनियन्त्रित!
यह कैसे होगा?
यह क्योंकर होगा?

भौतिक भोगमात्र सुलभ हो भूरि-भूरि,
विवेक हो कुंठित!
तन हो कनकाभ, मन हो तिमिरावृत!
कमलपत्री नेत्र हो बाहर-बाहर,
भीतर की आँखें निपट-निमीलित!
यह कैसे होगा?
यह क्योंकर होगा?

आओ प्रिय, आओ

आओ प्रिय, आओ !
बहुत दिन हो गये,
आज फिर साथ-साथ बैठ घड़ी-आध घड़ी
ऐसी भी नफरत क्या !
इतना अलघ्य है विरक्ति का प्राचीर ?
आओ प्रिय आओ,
भले ही बोल-चाल बद रहे
पूछापेखी नदारद
तो भी साथ-साथ बैठ घड़ी-आध घड़ी
खोटकर दूब की नरम-नरम सींक
खोदता रहूँगा दाँत
सोचता रहूँगा तुम्हारे ही बारे में
और तुम भी
निकाल लेना सिगरेट
जला लेना धीरे से
उठेगी तो सही आवाज
माचिस पर तीली घिसते ही
उड़ते रहेंगे धुए के छल्ले
सोचते रहोगे शायद मेरे ही बारे में
और कुछ ना सही, साथ-साथ बैठना तो होगा
बहुत दिन हो गये, आओ प्रिय आओ !

ठीक है, ठीक है
मैंने तुम्हें गालियाँ दी थीं
दुर्वचन कहे थे आमने-सामने
और, तुमने टेककर हथेली पर गाल
सब कुछ सुना था गंभीर-निर्वाक्
घुटते उद्वेगों की फीकी छाया
मुख की कांति को कर रही थी मलिन
करोटन के गमले में गड़ी थीं निगाहें
पैशाचिक तुष्टि से भास्वर था किंतु मेरा चेहरा
ठीक है, ठीक है
ढेर-ढेर-सी बातें
मैं नहीं भूल सका फिर तुम्हीं भला भूलोगे कैसे !
लेकिन, अब तो भई रहा नहीं जायगा मुझसे
बहुत दिन हो गये
आओ साथ-साथ बैठें
भाई का प्यार——
बहन की ममता——
मीत के नेह-छोह——
आओ आज सब कुछ तुम्हीं पर उड़ेल दूँ ?

काले-काले भौंरे

होठ हिले
हिलने रहे
देर तक हिलते ही रह गये
उस पार—
मोनिया दतपक्तियो के अदर
कापती रही क्षोभ के मारे जीभ
निकल आई बासी भाफ ताजा सौरभ के वदले
अर्धस्फुट कमल की पखडियो को क्या हो गया था जाने
निकलते रहे वाहर
एक के वाद एक
काले-काले भौंरे—
गालियाँ, आक्रोश, अभिशाप !
हिलते रहे होठ
देर तक हिलते ही रह गये
हिलती रही देर तक
अर्धस्फुट कमल की फीकी पखडियाँ

तन गई रीढ़

झुकी पीठ को मिला
किसी हथेली का स्पर्श
तन गई रीढ

महसूस हुई कन्धो को
पीछे से,
किसी नाक की सहज उष्ण निराकुल साँसे
तन गई रीढ

कौंधी कही चितवन
रँग गये कही किसी के होठ
निगाहो के जरिये जादू घुसा अदर
तन गई रीढ

गूंजी कही खिलखिलाहट
टूक-टूक होकर छितराया सन्नाटा
भर गये कर्णकुहर
तन गई रीढ,

आगे से आया
अलको के तैलाक्त परिमल का झोका
रग-रग मे दौड गई बिजली
तन गई रीढ

यह तुम थीं

कर गई चाक
तिमिर का सीना
जोत की फाँक
यह तुम थीं

सिकुड़ गई रग-रग
झुलस गया अंग-अंग
बनाकर ठूंठ छोड़ गया पतझार
उलंग असगुन-सा खड़ा रहा कचनार
अचानक उमगी डालों की सन्धि में
छरहरी टहनी
पोर-पोर में गसे थे टूसे
यह तुम थीं

झुका रहा डालें फैलाकर
कगार पर खड़ा कोढ़ी गूलर
ऊपर उठ आई भादों की तलइया
जुड़ा गया बौने की छाल का रेशा-रेशा
यह तुम थीं !

देखना ओ गंगा मइया

चंद पैसे
दो-एक दुअन्नी-इकन्नी
कानपुर-बंबई की अपनी कमाई में से
डाल गये हैं श्रद्धालु गंगामइया के नाम
पुल पर से गुजर चुकी है ट्रेन
नीचे प्रवहमान उथली-छिछली धार में
फुर्ती से खोज रहे पैसे
मल्लाहों के नंग-धड़ंग छोकरे
दो-दो पैर
हाथ दो-दो
प्रवाह में खिसकती रेत की ले रहे टोह
बहुधा-अवतरित चतुर्भुज नारायण ओह
खोज रहे पानी में जाने कौस्तुभ मणि !
बीड़ी पियेंगे
आम चूसेंगे
या कि मलेंगे देह में साबुन की सुगंधित टिकिया
लगाएंगे सर में चमेली का तेल
या कि हम-उम्र छोकरी को टिकली ला देंगे
पसंद करे शायद वह मगही पान का टकही बीड़ा
देखना ओ गंगा मइया !

निराश न करना इन नंग-धड़ंग चतुर्भुजों को !
कहते हैं, निकली थीं कभी तुम
बड़े चतुर्भुज के चरणों में निवेदित अर्घ-जल से
बड़े होंगे तो छोटे चतुर्भुज भी चलाएंगे चप्पू
पुष्ट होगा प्रवाह तुम्हारा इनके भी श्रम-स्वेद-जल से
मगर अभी इनको निराश न करना
देखना ओ गंगा मइया !

खुरदरे पैर

खुब गये
दूधिया निगाहों में
फटी बिवाइयोंवाले खुरदरे पैर

धँस गये
कुसुम-कोमल मन में
गुट्ठल घट्ठोंवाले कुलिश-कठोर पैर

दे रहे थे गति
रबड़-विहीन ठूँठ पैडलों को
चला रहे थे
एक नहीं, दो नहीं, तीन-तीन चक्र
कर रहे थे मात त्रिविक्रम वामन के पुराने पैरों को
नाप रहे थे धरती का अनहद फासला
घंटों के हिसाब से ढोये जा रहे थे !

देर तक टकराये
उस दिन इन आँखों से वे पैर
भूल नहीं पाऊँगा फटी बिवाइयाँ
खुब गईं दूधिया निगाहों में
धँस गईं कुसुम-कोमल मन में

नाकहीन मुखड़ा

गठरी बना गई
माघ की ठिठुरन
अद्भुत यह सर्वांग-आसन

हिली-डुली
वो देखो हिली-डुली गठरी
दे गया दिखाई झबरा माथा
सुलग उठी माचिस की तीली
बीडी लगा थूकने नाकहीन मुखड़ा
आँखो के नीचे
होंठो के ऊपर
दो बडे छेद थे
निकला उन छिद्रो से
धुआँ ढेर-ढेर सा
अंधेरे मे डूब गई ठूठ बाँह
सहलाते-सहलाते गर्दन
डूब गया सब कुछ अंधेरे में
शायद दुबारा खिंच जाय कस
चमके शायद दुबारा बीडी का सिरा

वहुत दिनों के वाद

वहुत दिनो के वाद
अव की मैंने जी भर देखी
पकी-सुनहली फ़सलो की मुसकान
—वहुत दिनो के वाद

वहुत दिनो के वाद
अव की मैं जी भर सुन पाया
धान कूटती किशोरियो की कोकिल कंठी तान
—वहुत दिनो के वाद

वहुत दिनो के वाद
अव की मैंने जी भर सूंघे
मौलसिरी के ढेर-ढेर-से ताजे-टटके फूल
—वहुत दिनो के वाद

वहुत दिनो के वाद
अव की मैं जी भर छू पाया
अपनी गॅवई पगडडी की चदनवर्णी धूल
—वहुत दिनो के वाद

बहुत दिनो के वाद
अब की मैंने जी भर तालमखाना खाया
गन्ने चूसे जी भर
—बहुत दिनो के वाद

बहुत दिनो के वाद
अब की मैंने जी भर भोगे
गध-रूप-रस-शब्द-स्पर्श सब साथ-साथ इस भूपर
—बहुत दिनो के बाद

क्या अजीव नेचर पाया है

कदम-कदम पर मुसकाती है
बात-बात पर हँस देती है
दिल का दर्द कभी नही जाहिर करती है
सच बतलाना, कभी उसास नही भरती है ?
मुझको तो लगता है, तू ने बहुत-बहुत-सा जहर पिया है
धीरे-धीरे सारा ही विप पचा लिया है
शोधित विप का सुधा-तुल्य यह झाग जब कभी
उफन-उफनकर बाहर आता
दुनिया को लगता है   रे, रे ! परजाते के फूल झर रहे
इस लडकी के होठो से तो
क्या अजीव नेचर पाया है
पग-पग पर यू ढेर-ढेर-सा हँस देती है

खुली एक दिन, मुझसे बोली
बाबा, पिछले छै वर्षो से गूगी हूँ मै
मिला न कोई
मिली न कोई
जिसके आगे अपने दिल की बाते रखती
परिचित है यूँ तो बहुतेरे
बोल-चाल या हँसी-खुशी के अवसर आते ही रहते है

फिर भी मै गूगी हूं बावा!
कभी-कभी तो लगता है,
इस दिल-दिमाग को कही न लकवा मार गया हो!
पागलखाने म भर्ती हो जाऊं बावा?

यह सब सुनकर मैंने उसको
मीठी-सी फटकार बताई
और कहा—आ, ओ री बौडम,
चले अपन मद्रासी होटल, गरम-गरम काफी पी आएँ!
गालो पर पड गई प्यार की दो चपते तो
लगा दिया छत-फाड ठहाका!
क्या अजीब नेचर पाया है!
कैसी अद्भुत है यह लडकी!!

तुम किशोर, तुम तरुण..

तुम किशोर
तुम तरुण
तुम्हारी राह रोककर
अनजाने यदि खडे हुए हम
कितना ही गुस्सा आए, पर, मत होना नाराज
वय संधि के कितने ही क्षण हमने भी तो
इसी तरह फेनिल क्षोभों के बीच गुजारे
कान लगाकर सुनो कहीं से आती है आवाज—
"भले ही विद्रोही हो,
"सहनशील होती है लेकिन अगली पीढी"
पर, अपने प्रति सहिष्णुता की भीख न हम माँगेंगे तुमसे
मीमांसा का मस्ततिक्त वह झाग
अजी हम खुशी-खुशी पी लेंगे!
क्रोध-क्षोभ के अवसर चाहे आ भी जाए
किन्तु द्वेष से दूर रहेंगे

तुम किशोर
तुम तरुण
तुम्हारी अगवानी में
खुरच रहे हम राजपथों की काई-फिसलन

खोद रहे जहरीली घासें
पगडडियाँ निकाल रहे हैं
गुफित कर रक्खी है हमने
ये निर्मल-निश्छल प्रशस्तियाँ
आओ, आगे आओ, अपना दायभाग लो
अपने स्वप्नो को पूरा करने की खातिर
तुम्हें नही तो और किसे हम देखें बोलो!
निविड अविद्या से मन मूर्छित
तन जर्जर है भूख-प्यास मे
व्यक्ति-व्यक्ति दुख-दैन्य ग्रस्त है
दुविधा मे समुदाय पस्त है
लो मशाल, अब घर-घर को आलोकित कर दो
सेतु बनो प्रज्ञा-प्रयत्न के मध्य
शाति को सर्वमगला हो जाने दो
खुश होंगे हम—
इन निर्बल बाँहो का यदि उपहास तुम्हारा
क्षणिक मनोरजन करता हो
खुश होंगे हम!

होतीं बस आँखें ही आँखें

थकी-पकी तनी-घनी भौहे
नीली नसोवाले ढलके पपोटे
सयत्न-विस्फारित कोए
कोरो मे जमा हुआ कीचड
कुछ नही होता
कुछ नही होता
होती बस आँखे ही आँखे

बेतरतीब बालो का जगल
झुर्रियो भरा कुचित ललाट
खिचडी दाढी का उजाड घोसला
कुछ नही होता
कुछ नही होता
होती बस आँखे ही आँखे

मूछो की ओट मे खोए होठो का सीमात
सीध मे लबी खिची वडी नथनोवाली नाक
अधिक से अधिक लटके हुए गाल
झाकते हुए लबे-लबे कान
कुछ नही होना
कुछ नही होता
होती बस आँखे ही आँखे

अकाल और उसके वाद

कई दिनो तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनो तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनो तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनो तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त

दाने आए घर के अंदर कई दिनो के वाद
धुआँ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के वाद
चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनो के वाद
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनो के बाद

वसंत की अगवानी

दूर कहीं पर अमराई में कोयल बोली
परत लगी चढ़ने झींगुर की शहनाई पर
वृद्ध वनस्पतियों की ठूठी शाखाओं में
पोर-पोर टहनी-टहनी का लगा दहकने
टूसे निकले, मुकुलों के गुच्छे गदराए
अलसी के नीले फूलों पर नभ मुस्काया
मुखर हुई बांसुरी, उंगलियां लगीं थिरकने
पिचके गालों तक पर है कुंकुम न्यौछावर
टूटे पड़े भौंरे रसाल की मंजरियों पर
मुरक न जाए सहजन की ये तुनुक टहनियाँ
मधुमक्खी के झुंड भिड़े हैं डाल-डाल में
जौ-गेहूँ की हरी-हरी बालों पर छाई
स्मित-भास्वर कुसुमाकरकी आशीष रंगीली

शीत समीर, गुलाबी जाड़ा, धूप सुनहली
जग वसंत की अगवानी में बाहर निकला
माँ सरस्वती ठौर-ठौर पर पड़ी दिखाई
प्रज्ञा की उस देवी का अभिवादन करने
आस्तिक-नास्तिक सभी झुक गए, माँ मुस्काई
बोली—बेटे, लक्ष्मी का अपमान न करना

जैसी मै हूँ, वह भी वैसी माँ है तेरी
धूर्ता ने झगडे की बातें फैलाई है
हम दोनो ही मिल-जुलकर ससार चलाती
बुद्धि और वैभव दोनो यदि साथ रहेगें
जन-जीवन का यान तभी आगे निकलेगा
इतना कहकर मौन शारदा हुई तिरोहित
दूर कही पर कोयल फिर-फिर रही कूकती
झींगुर की शहनाई बिल्कुल बद हो गई

नीम की दो टहनियाँ

नीम की दो टहनियाँ
झाँकती है सीखचो के पार

यह कपूरी धूप
शिशिर की यह दुपहरी, यह प्रकृति का उल्लास
रोम-रोम बुझा लेगा ताजगी की प्यास

रात भर जगती रही
खटती रही
अब कर रही आराम
गाढी नीद का आश्वास भर अब मौन मे लिपटा हुआ है
—बेखबर सोई हुई है छापने की यह विराट मशीन
उधर मुह बाए पडे है टाइपो के मलिन-धूसर केस
पर, इधर तो झाकती है दो सलोनी टहनियाँ
सीखचो के पार

जयति नखरंजनी

सामने आकर
रुक गई चमचमाती कार
बाहर निकली बामकसज्जा युवतियाँ
चमक उठी गुलाबी धूप में तन की चपई कांति
तिकोने नाखूनोंवाली उंगलियाँ
सुर्ख नेलपालिश
कीमती रिस्टवाच
अंगूठियों के नग
कानों के मणिपुष्प
किंचित् कपचे हुए सघन नील-कुंतल
सब कुछ चमक उठा, महक उठा वायुमंडल
तरल त्वरित गति थी
ललित थी भंगिमा
करीब के पार्टी-कैम्प तक जाकर पूछ ली अपनी क्रमसंख्या
तत्पश्चात् आगे बढ़ी पोलिंग बूथ की ओर
आ रहा था डालकर वोट एक अधेड़
उंगली की जड़ में चमक रहा था काला ताजा निशान
ठमक गए सहसा बेचारियों के पैर
हाय, इतने सुंदर हाथ हो जाएंगे दागी !
भड़क उठा परिमार्जित रुचि-बोध—

फि कौन लगवाए काला निशान।
कौन ले वैलट पेपर, मनदान कौन करे। ,.
क्षण भर ठिठक कर
नई दिल्ली की तीनों परियाँ
मुड गईं महसा वापस
स्टार्ट हुई कार, लोग लगे हसने
वात थी जरा-सी वस काले निशान की,
तीन वोट रह गए फैशन के नाम पर।

गुनगुनाता रहा वही
वार-वार एक युवक—
जयति नखरजनी।
जयति दृग-अजनी।
भक्त-भ्रम - भजनी।
नवयुग निरजनी।

तो फिर क्या हुआ ?

नत नयन
मुद्रित मुख
प्रज्ञाकर
वैठे हैं कुर्सी पर
मात्र वेतन से मतलव !

ढेले चलाए
अशात उत्तेजित भीड ने
कर गई विपाक्त वातावरण को
पुलिस की अश्रुगैस
निरपराध-निरीह किशोर हुआ खून
पिट गए शात-शिष्ट अफसर
प्रज्ञाकर गुणनिधान वोले—
तो फिर क्या हुआ !
नत नयन मुद्रित मुख कुर्सीधर ने देखा—
तो फिर क्या हुआ !
महीन मुस्कान फेंकते रहे मेरी ओर
वेतनसर्वस्व बुद्धिजीवी महानुभाव
वढा दी आगे गोल्ड फ्लैक की पाकिट
इशारे से कहा—लीजिए !

और खुद की खातिर निकाला
मोटा मद्रासी सिगार

नदी के पेट मे चला गया है समूचा गाँव
बे-घर हो गए है हजारो लोग
पगला गई है बूढी गडक
छोड कर सिगार का ढेर-ढेर धुआँ
प्रज्ञाकर गुणनिधान आचार्य बोले—
यह सब तो चलता ही रहेगा
कहाँ तक रोएगे आप ?
प्रलय नही होगा तो सृष्टि कैसे होगी,
क्यो भला बद हो नाश और निर्माण के चक्र ?
और फिर मेरी तरफ झुक गए,
आहिस्ते से पूछा—
आखिर कुछ तो मगवाऊँ, क्या लेगे आप ?
काफी या ओवल्टीन ?
या फिर नीबू का शर्बत ?

गजब का निकला सोवियत बालचद्र
आचार्य भुनभुनाए—
यह सब करिश्मे उन्हे ही मुबारक हो
अपना तो आसमान फीका ही रहेगा !

आ चुके थे काफी के प्याले
शुरू हुई चुस्कियाँ
स्पदित थे होठ
कुछ देर बाद आचार्य बोले—

डालर की किल्लत भी खूब रही
लल्ला नहीं जा सका शिकागो
हो गई पैसेज रद्द
ट्रक मे पूछा था

लेकर काफी की आखिरी घूट
मैंने कहा सहज-शिष्ट स्वर मे—
तो फिर क्या हुआ ?
सिगारपायी कुर्सीधर आचार्य बोले—
हो गई गरीब की कैरियर चौपट
और आप पूछते है,
तो फिर क्या हुआ !
तो फिर क्या हुआ !
आप भी साहब निरे साहित्यिक ठहरे !!

जी हाँ, सो तो हूँ ही—
आहिस्ते मे निकला मेरे मुह से
अगले ही क्षण बढ गया हाथ गोल्ड फ्लैक की ओर
नत नयन मुद्रित मुख बुद्धिजीवी महानुभाव
'स्टेट्समैन' मे डूब गए
और मै उठ आया
छोड आया धुएँ के छल्ले

सौंदर्य-प्रतियोगिता

गगा की मछली
यमुना की मछली
सहेली थी दोनो,
हिल-मिल कर रहती थी
कभी-कभी निकल जाती थी दूर
सगम मे आगे, और आगे, और आगे
एक वार हुआ यूँ कि
सुलग उठी स्पर्धा की आग दोनो के अदर
—मै हूँ सुदर तो मै हूँ सुदर!
इस तू-तू-मै मे दिन चढा ऊपर
कि सहसा दे गया दिखाई कछुआ रेती पर
जाडे की धूप मे पडा था पसर कर

मछलियाँ पास आई,
प्रणाम किया, बोली—
सच-सच कहिएगा बाबा,
हम मे से किसका वाजिब है खूबसूरती का दावा?

वयस्क-बुजुर्ग सुधी शिरोमणि कछुआ
हिलाता रहा लबी गर्दन, देखता रहा मछलियो की ओर

बोला वह स्थितप्रज्ञ कुछ क्षण उपरान्त—
गंगा की मछली, तुम भी सुंदर हो
जमना की मछली, तुम भी सुंदर हो
वाजिब है दोनों का दावा
चीख पड़ी मछलियाँ—तो फिर बाबा
नाहक हम लड़ते रहे इतनी देर ?
कहिए साफ़-साफ़
किसके हकमें पड़ता है इन्साफ़ ?
तो फिर सच-सच बतला दूँ ?—
पक्की प्रज्ञावाले बाबाजी बोले गर्दन हिला कर
—तुम भी सुंदर हो गंगा की मछली,
जमना की मछली, तुम भी सुंदर हो
किंतु, बनिस्बत तुम दोनों के
मैं अधिक सुंदर हूँ
बिल्लौरी काच-सी कान्तिवाली यह गर्दन
बरगद-सी छतनार ऐसी पीठ
नन्हे मसूर-से ऐसे ये नेत्र
देखी नहीं होगी ऐसी खूबसूरती
आओ, और निकट आओ !
यूँ मत घबराओ !

भाग कर दोनों हो गईं गायब
संगम की अनन्त जलराशि में
अधूरा ही रह गया
प्रवचन महामुनि का

चातकी

प्रतीक्षा थी, आस थी, विश्वास था
और, प्रियतम ! जले हिय पर लदा
वेदनाओं का विकट इतिहास था !
कठगत थे प्राण तेरे ध्यान में
निठुर जग तो ले रहा था रस यहाँ
'पी कहाँ' की मर्मवेधक तान में !

सुहाई मुझको न काली घन-घटा
सुहाई मुझको न पावस की छटा
जलधि मानो ही मुझे खारे लगे
लगी फीकी उमडती नदियाँ सभी
चित्त पर मेरे न चढ पाया कभी।
वह सरोवर भी धवल कैलाश का

टुकडियों में बँटे औ बिखरे हुए
धन्य ! स्वाती के जलद तुम धन्य हो
विकल थी चिर प्यास में यह चातकी
आ गए तुम, अब कमी किस बात की
किया दर्शन, नयन शीतल हो गए
उपालभक भाव थे, सब सो गए
आ गई है जान में अब जान रे
कर लिया मैंने अमृत का पान रे
(चार बूँदें ही मुझे पर्याप्त थीं।)

कालिदास

कालिदास, सच-सच बतलाना!
इंदुमती के मृत्युशोक से
अज रोया या तुम रोये थे?
कालिदास, सच-सच बतलाना!

शिवजी की तीसरी आँख से
निकली हुई महाज्वाला से
घृतमिश्रित सूखी समिधा-सम
कामदेव जब भस्म हो गया
रति का क्रंदन सुन आँसू से
तुमने ही तो दृग धोये थे?
कालिदास, सच-सच बतलाना
रति रोई या तुम रोये थे?

वर्षा ऋतु की स्निग्ध भूमिका
प्रथम दिवस आषाढ मास का
देख गगन में श्याम घन घटा
विधुर यक्ष का मन जब उचटा
खडे-खडे तब हाथ जोडकर
चित्रकूट के सुभग शिखर पर

उस बेचारे ने भेजा था
जिनके ही द्वारा संदेशा
उन पुष्करावर्त मेघों का
साथी बनकर उड़नेवाले
कालिदास, सच-सच बतलाना
परपीड़ा से पूर-पूर हो
थक-थककर औ' चूर-चूर हो
अमल-धवल गिरि के शिखरों पर
प्रियवर, तुम कबतक सोये थे ?
रोया यक्ष कि तुम रोये थे ?
कालिदास, सच-सच बतलाना !

हटे दनुजदल, मिटे अमंगल

पुलकित तन हो
मुकुलित मन हो
सरस और सक्षम जीवन हो।
फिर न युद्ध हो
गति न रुद्ध हो
निर्भय-निरातंक यौवन हो।

अन्न - वस्त्रदा
सुखदा, शुभदा
प्राणों से भी बढ़ कर प्यारी।
हिम - किरीटिनी
जलधि - पैंजनी
बने स्वर्ग यह भूमि हमारी।
अधर-अधर पर
हास अनश्वर
शिर-शिरपरअमिताभताज हो।
सतत अभ्युदित
जन जन प्रमुदित
सर्व सुखद सुन्दर समाज हो।

सभी कलाधर
सभी सुधाकर
सब कें मुह पर अतुल कान्ति हो !
हटे दनुजदल
मिटे अमगल
जल, थल, नभ सर्वत्र शाति हो !

सिन्दूर तिलकित भाल

घोर निर्जन मे परिस्थिति ने दिया है डाल !
याद आना तुम्हाग सिदूरतिलकित भाल !
कौन है वह व्यक्ति जिसको चाहिये न समाज ?
कौन है वह एक जिसको नही पडना दूसरे से काज ?
चाहिये किसको नही सहयोग ?
चाहिये किसको नही सहवास ?
कौन चाहेगा कि उसका शून्य मे टकराय यह उच्छ्वास ?
हो गया हूँ मै नही पापाण
जिसको डाल दे कोई कही भी
करेगा वह कभी कुछ न विरोध
करेगा वह कुछ नही अनुरोध
वेदना ही नही उसके पास
फिर उठेगा कहाँ से नि श्वास
मै न साधारण, सचेतन जतु
यहाँ हाँ—ना—किंतु और परन्तु
यहाँ हर्प-विषाद-चिता-क्रोध
यहाँ है सुख-दु ख का अवबोध
यहा है प्रत्यक्ष औ' अनुमान
यहाँ स्मृति-विस्मृति के सभी के स्थान
तभी तो तुम याद आती प्राण,
हो गया हूँ मै नही पापाण !

याद आते स्वजन
जिनकी स्नेह से भींगी अमृतमय आँख
स्मृति-विहगम की कभी थकने न देगी पाँख
याद आता मुझे अपना वह 'तरउनी' ग्राम
याद आती लीचियाँ, वे आम
याद आते मुझे मिथिला के रुचिर भू-भाग
याद आते धान
याद आते कमल, कुमुदिनि और तालमखान
याद आते शस्य-श्यामल जनपदो के
रूप-गुण-अनुसार ही रक्खे गये वे नाम
याद आते वेणुवन वे नीलिमा के निलय, अति अभिराम

धन्य वे जिनके मृदुलतम अक
हुए थे मेरे लिए पर्यंक
धन्य वे जिनकी उपज के भाग
अन्न-पानी और भाजी-साग
फूल-फल औ' कद-मूल, अनेक विध मधु-मास
विपुल उनका ऋण, सधा सकना न मैं दशमाश
ओह, यद्यपि पड गया हू दूर उनसे आज
हृदय से पर आ रही आवाज—
धन्य वे जन, वही धन्य समाज
यहाँ भी तो हू न मै असहाय
यहाँ भी है व्यक्ति औ' समुदाय
किन्तु जीवन भर रहूँ फिर भी प्रवासी ही कहेगे हाय !
मरूँगा तो चिता पर दो फूल देंगे डाल
समय चलता जायगा निर्बाध अपनी चाल
सुनोगी तुम तो उठेगी हूक

मैं रहूँगा सामने (तसवीर में) पर मूक
सान्ध्य नभ में पश्चिमान्त-समान
लालिमा का जब करुण आख्यान
सुना करता हूँ, सुमुखि उस काल
याद आता तुम्हारा सिन्दूरतिलकित भाल

यह दंतुरित मुस्कान

तुम्हारी यह दंतुरित मुस्कान
मृतक में भी डाल देगी जान
धूलि-धूसर तुम्हारे ये गात
छोड़ कर तालाब मेरी झोपड़ी में खिल रहे जलजात
परस पा कर तुम्हारा ही प्राण,
पिघल कर जल बन गया होगा कठिन पाषाण
छू गया तुम से कि झरने लग पड़े शेफालिका के फूल
बाँस था कि बबूल ?
तुम मुझे पाये नहीं पहचान ?
देखते ही रहोगे अनिमेष !
थक गये हो ?
आँख लूँ मैं फेर ?
क्या हुआ यदि हो सके परिचित न पहली बार ?
यदि तुम्हारी माँ न माध्यम बनी होती आज
मैं न सकता देख
मैं न पाता जान
तुम्हारी यह दंतुरित मुस्कान
धन्य तुम, माँ भी तुम्हारी धन्य !
चिर प्रवासी मैं इतर, मैं अन्य !
इस अतिथि से प्रिय तुम्हारा क्या रहा सम्पर्क

उँगलियाँ माँ की करानी रही हं मधुपर्क
देखते तुम इधर कनखी मार
और होती जब कि आँखे चार
तब तुम्हारी दतुरित मुस्कान
मुझे लगती बडी ही छविमान

गीले पाँक की दुनिया गई है छोड़

बढ़ी है इस बार गगा खूब
दियारो पर गाँव कितने ही गए है डूब
किन्तु हम तो शहर की इस छोर पर है
देखते है रात-दिन जल-प्रलय का ही दृश्य
पत्थरो से बधी गहरी नीव वाला
किराये का घर हमारा रहे यह आबाद
पुराना ही सही पर मजबूत
रही जिसको अनवरत झकझोर
क्षुब्ध गगा की विकट हिलकोर
सामने ही पडोसी के—
नीम, महजन, आँवला, अमरूद
हो रहे आकठ जल मे मग्न
रह न पाए स्तभ पुल के नग्न
दूधिया पानी बना उनका रजत परिधान
रेलगाडी के पसिजर खडे होकर
खिड़कियो से झाँकते है
देखते ह बाढ का यह दृश्य
उधर झूसी इधर दारागज
बीच का विस्तार
बन गया है आज पारावार

भगवती भागीरथी—
ग्रीष्म म यह हो गई थी प्रतनु-सलिला
विरहिणी की पीठ-लुंठित एकवेणी-सदृश
जिसको देखते ही व्यथा से अवसन्न होते रहे मेरे नेत्र
रिक्त ही था वरुण की कल-केलि का यह क्षेत्र
काकु करती रही पुल की प्रतिच्छाया, मगर यह थी मौन
उम प्रतनुता स अरे इस वाढ की तुलना करेगा कौन ?

सो गए जल मे वडे हनुमान
तख्तपोश उठा लाए दूर गगापुत्र
कृष्णद्वैपायनो का परिवार—
मलाहो के झोपडो का अति मुखर ससार
त्रिवेणी के वॉध पर आकर हुआ आवाद
चिर उपेक्षित हमारी छोटी गली की
रूक्ष-दतुर सीढियाँ ही बन गई है घाट
भला हो इस वाढ का !

पाँच दिन वीते कि हटने लग गई वस वाढ
लौटकर आ जायगा फिर क्या वही आपाढ ?
हटी गगा
किन्तु, गीले पाँक की दुनिया गई है छोड
और उस पर
मलाहो के छोकरो की क्रमाकित पद-पक्ति
खूब सुन्दर लग रही है
मन यही करता कि मै भी
उन्ही मे से एक होता

और—
नगे पैर, नगा सिर
समूचा बदन नगा .
विचरता पकिल पुलिन पर
नहीं मछली ना मही,
दस-पाँच या दो-चार क्या कुछ घुघचियाँ भी नही मिलती ? `

और तू चक्कर लगा आया तमाम

रीते मन !
छूछे मन !
खाली मन !

दिशाशून्य, इंगितहीन !
श्रांत-क्लांत, दलित-दीन !
भीतर के भयभीत !
बाहर के युगजीत !
क्षुद्र मन, छिछोर मन !
डाकू मन, चोर मन !
बेहद भगोड़े मन !
लगाऊँ कोड़े मन ?
च्चु च्चु च्चु चू
भाग न तू, भाग न तू
आ भाई, हाँ भाई, आ जा, अब आ जा !
दस-द्वारी नगरी के ओ रे प्रिय राजा
आ जा प्रिय आ जा !
आ भी तो—
ले भी तो—
चाकलेट-टाफी

चल, पिला लाऊँ मद्रासी काफी
आ जा प्रिय, आ जा।
तन के प्रिय राजा।
चु च्चु चू
डर न तू, भाग न तू
सजा नहीं दूंगा मैं
बलैया ही लूंगा मैं
तू तो प्रिय, यूं ही बस भटकता है।
देह के महल में क्या कुछ खटकता है?
आ भी तो, बता भी तो।
लगे कुछ पता भी तो।
ले चल तन को भी उड़ाकर सागर पार
अकेले क्या छूना हिमगिरि का घन तुषार
दिखा इन दृगों को भी गोबी के मरु-कण
रगों तक पहुँचे खरोंच के गहरे व्रण
चुपके क्या भागना।
अकेले क्या जागना।
पुलाव क्या खाना ख्याली, मन।
रीते मन, छूछे मन, खाली मन।

खींच रहा बार-बार कुंचित अलकों का स्निग्ध सौरभ?
बुलाए लिए जा रहे झुलसने को साथ-साथ अरुण शलभ?
आमंत्रित कर रही शतरूपा शफरी?
कर रही मदमस्त निज गुंजन से भ्रमरी?
हाय मन, हाय मन।
यह सब नहीं अपने बस का।
कब कहाँ लगा तुझे इनकी संगत का चस्का।

सभल जा औरो को फामने को आतुर मन, जाली मन।
रीते मन, छूछे मन, खाली मन।

निठुर होकर बहुधा चलाए हे चाबुक विवेक के
खीच-खीच बढाना रहा हूँ सीमान टेक के
इकन्नी भर स्वेच्छा-सुख की खातिर सदैव तरसाया है
वक्त-बेवक्त विधि का, निपेध का बादल बरसाया है
ठगा है पग-पग पे, बात-बात में दिया है यू ही दिलासा
खुद की सनक के पीछे रखा है तुझे भूखा-प्यासा
फिर नहीं ऐसा करूँगा, ले, पकडता हूँ कान।
आ मेरे मीत, तरस भी तो खा, जा भी तो मान।
पडे है करने को बहुत-सारे काम,
और तू चक्कर लगा आया तमाम।
अब तो बस कर, लाज रख लाल।
कई दिनों से सूना हूँ, निठल्ला, बुरा है हाल।
आ जा, आ जा मेरे भोले शाह।
जाने कब से देख रहा हूँ राह
कहूँगा नही कुछ, चाहे जैसे रहना
सह लूँगा चाहे जो भी पडे सहना
बहुत बडी हानि है मेरे लेखे तेरा यह असहयोग
गति की इति है, जीवन का अन्त है तेरा यह पलायन
जब कभी यूँ तू होता है विक्षिप्त
रह नही पाता हूँ निर्लिप्त
लीलने लगते शून्यता के अनन्त आवर्त
मन की रुझान है तन के स्वास्थ्य की पहली शर्त
आ जा प्रिय, आ जा प्रिय, पतझड समाप्त हो
जीवन की बगिया के माली मन।
सादे मन, रँगीले मन, भरे मन, खाली मन।

कैसा लगेगा तुम्हे ?

कैसा लगेगा तुम्हे ?
कुटिलमति मायावी दस्यु यदि
हालाहल घोल जाय गगा-यमुना के जल मे
जहरीली गैस मे कर दे यदि दूपित दक्षिण समीर को
कैसा लगेगा तुम्हे ?

कैसा लगेगा तुम्हे ?
जगली मुअर यदि ऊधम मचाए
तहस-नहस कर डाले फसले
देखकर पदमर्दित उत्कट सुरभिवाली दूधिया वाले
देखकर भूलुठित कुचली कनकमजरिया
टूक-टूक हो यदि हृदय लोकलक्ष्मी का
कैसा लगेगा तुम्हे ?

कैसा लगेगा तुम्हे ?
बारूदी शोलो मे दहकें अमगइयाँ
झुलस-झुलस राख हो ताम्रचूड आम्रपल्लव
वेणुवन ठूठ हो, ठूठ हो शालवन
खा-खाकर आँच फटे महुआ की रग-रग
दूधिआ खून वहे, वह-वहकर जमता जाय
कैसा लगेगा तुम्हें ?

ऐसा क्या अब फिर-फिर होगा ?

ग्रामवासिनी-नगरवासिनी
माताओं-बहनों-बहुओं की
रुकी निगाहें, झुकी निगाहें
क्रुद्ध निगाहें, क्षुब्ध निगाहें
अरुण निगाहें, करुण निगाहें
डरी निगाहें, भरी निगाहें
तरल निगाहें, सजल निगाहें
व्यथित निगाहें, मथित निगाहें
स्तब्ध निगाहें, शून्य निगाहें
देख रहीं बी० एन्० कालिज के बरामदे पर सूखा शोणित-पंक
प्रभाहीन इन चेहरों पर छा रहा स्याह आतंक
समझ न पातीं, किसने थोपा मानवता पर ऐसा अमिट कलंक
भीगी-भीगी, सहमी-सहमी
दहशतभरी निगाहों के ये दृश्य भला मैं भूल सकूंगा ?
भूल सकूंगा सिंदूरित सीमंत लिये उस नवयुवती की
'ईस-ईस' सी मुखर टीस ?
घुटती-सी सांसें ?
घायल नजरों पर पलकों की पूरी पट्टी ?
गोरी ग्रीवा की नलियों में भिचे-भिचे-से प्राण ?
चंपई देह, कांपती कनकलता-सी   भूल सकूंगा ?

माँ या चाची—किस अधेड महिला ने उसको
गिरते-गिरते बचा लिया है, कौन बचाए ?
जैसे-तैसे वे आगे बढ गई किंतु मै देख रहा हूँ
सोच रहा हूँ, देख रहा हू
देख रहा हूँ, सोच रहा हूँ
उस तरुणी का भी दूल्हा शायद कालिज मे पढता होगा !
इसी साल तो नही हुई उनकी भी शादी ?
अगर पुलिस की नादिरशाही का शिकार हो गया
कहीं उसका भी दूल्हा
तो क्या होगा ?
तो क्या होगा ?
इसी तरह उस बेचारे का लहू जमेगा ?
आ-आ के देखेगी दुनिया ?
भीगी-भीगी सहमी-सहमी
दहशत-भरी निगाहो का वह दृश्य देख कर
खोया-खोया इसी तरह कवि खडा रहेगा ?
हाय, हाय मै सोच रहा हूँ कभी बाते ! !
ऐसा क्या अब फिर-फिर होगा ?
ज्ञानपीठ ये दूषित होगे बार-बार क्या ?

ओ जन-मन के सजग चितेरे

हँसते हँसते, बातें करते
कैसे हम चढ गए धडाधड
ववेश्वर के सुभग शिखर पर
मुन्ना रह-रह लगा ठोकने
तो टुनटुनिया पत्थर बोला—
हम तो है फौलाद, समझना हमें न तुम मामूली पत्थर
नीचे है बुंदेल खड की रत्न-प्रसविनी भूमि
शीश पर गगन तना है नील मुकुर-सा
नाहक नही हमें तुम छेडो
फिर मुन्ना कैमरा खोलकर
उन चट्टानो पर बैठे हम दोनो की छवियाँ उतारता रहा देर

नीचे देखा
तलहटियो में
छतों और खपरैलोवाली
सादी-उजली लिपी-पुती दीवारोवाली
सुदर नगरी बिछी हुई है
उजले पालो वाली नौकाओं से शोभित
श्याम-सलिल सरवर है बादा
नीलम की घाटी मे उजला श्वेत कमल-कानन है बाँदा।

अपनी इन आँखों पर मुझको
मुश्किल से विश्वास हुआ था
मुह से सहसा निकल पडा—
क्या सचमुच बादा इतना सुदर हो सकता है
यू० पी० का वह पिछडा टाउन कहाँ हो गया गायब सहसा
बादा नही, अरे यह तो गधर्व नगर है

उतरे तो फिर वही शहर सामने आ गया!
अधकच्ची दीवारोवाली खपरैलो की ही बहार थी
सडकें तो थी तग किंतु जनता उदार थी
बरस रही थी मुस्कानो मे विवश गरीबी
मुझे दिखाई पडी दुर्दशा ही चिरजीवी
ओ जन-मन के सजग चितेरे
साथ लगाए हम दोनो ने बादा के पच्चीसो फेरे
जनसस्कृति का प्राणकेंद्र पुस्तकागार वह
वयोवृद्ध मुन्शीजी मे जो मिला प्यार वह
केन नदी का जलप्रवाह, पोखर नवाब का
वृद्ध सूर्य के चचल शिशु भास्वर छायानट
साध्य घना की सतरगी छवियो का जमघट
रॉड ज्योति से भूरि-भूरि आलोकित स्टेशन
वही पास मे भिखमगो का चिर-अधिवेशन
कागज के फूलो पर ठिठकी हुई निगाहे
बसे छबीली, धूल भरी वे कच्ची राहे
द्वारपाल-सा जाने कब से नीम खडा था
ताऊजी थे बडे कि जाने वही बडा था
नेह-छोह की देवी, ममता की वह मूरत

भूलूंगा मैं भला बहूजी की वह सूरत ?
मुन्नू की मुस्कानों का प्यासा बेचारा
चिकना-काला मखमल का वह बटुआ प्यारा
जी, रमेश थे मुझे ले गए केन नहाने
भूल गया उस दिन दतुअन करना क्यों जाने
शिष्य तुम्हारे शब्द-शिकारी
तरुण-युगल इकबाल-मुरारी !
ऊँचे-ऊँचे उड़ती प्रतिभा थी कि परी थी
मेरी खातिर उनमें कितनी ललक भरी थी
रह-रह मुझको याद आ रहे मुन्ना दोनों
तरुणाई के ताजा टाइप थे वे मोनो

बाहर-भीतर के वे आंगन
फले पपीतों की वह बगिया
गोल बाँधकर सबका वह 'दुखमोचन' सुनना
कड़ी धूप, फिर बूंदाबांदी
फिर शशि का बरसाना चांदी
चितकबरी चांदनी नीम की छतनारी डालों से
छन-छनकर आती थी
आसमान था साफ, टहलने निकल पड़े हम
मैं बोला केदार, तुम्हारे बाल पक गए !
'चिन्ताओं की घनी भाफ में सीझे जाते हैं बेचारे'—
तुमने कहा, सुनो नागार्जुन,
दुख-दुविधा की प्रबल आंच में
जब दिमाग ही उबल रहा हो
तो बालों का कालापन क्या कम मखौल है ?

ठिठक गया मैं, तुम्हे देखने लगा गौर से
गौर-गेहुआँ मुख मडल चादनी रात मे चमक रहा था।
फैली-फैली आँखो मे युग दमक रहा था
लगा सोचने—
तुम्हे भला क्या पहचानेंगे बादावाले।
तुम्हे भला क्या पहचानेंगे साहब काले।
तुम्हे भला क्या पहचानेंगे आम मवक्किल।
तुम्हे भला क्या पहचानेंगे शासन की नाको पर के तिल।
तुम्हे भला क्या पहचानेंगे जिला-अदालत के वे हाकिम।
तुम्हे भला क्या पहचानेंगे मात्र पेट के बने हुए है जो कि मुलाजिम।
प्यारे भाई, मैंने तुमको पहचाना है
समझा-बूझा है, जाना है
केन-कूल की काली मिट्टी, वह भी तुम हो।
कालिजर का चौडा सीना, वह भी तुम हो।
ग्रामवधू की दबी हुई कजरारी चितवन, वह भी तुम हो।
कुपित कृपक की टेढी भौहे, वह भी तुम हो
खडी-सुनहली फसलो की छवि-छटा निराली, वह भी तुम हो।
लाठी लेकर कालरात्रि मे करता जो उनकी रखवाली, वह भी तुम हो

जनगण-मन के जाग्रत शिल्पी,
तुम धरती के पुत्र गगन के तुम जामाता।
नक्षत्रो के स्वजन कुटुम्बी, सगे वधु तुम नद-नदियो के।
झरी ऋचा पर ऋचा तुम्हारे सबल कठ स
स्वर-लहरी पर थिरक रही है युग की गगा
अजी, तुम्हारी शब्दशक्ति ने बाँध लिया है भुवनदीप कविनेरुदा को
मैं बडभागी, क्योकि प्राप्त है मुझे तुम्हारा

निश्छल-निर्मल भाईचारा
मैं बडभागी, तुम जैसे कल्याण मित्र का जिसे सहारा
मैं बडभागी, क्योंकि चार दिन बुंदेलों के साथ रहा हूं
मैं बडभागी क्योंकि केन की लहरों में कुछ देर बहा हूं
बडभागी हूं, बॉट दिया करते हो हर्ष-विषाद
बडभागी हूं, बार-बार करते रहते हो याद